दलित-साहित्य की अवधारणाएँ

राजकुमार
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

दलित-साहित्य की अवधारणा को जानने-समझने के लिए 'दलित' शब्द की उत्पत्ति, उसकी वैचा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक व्याख्या करना नितान्त आवश्यक है। संस्कृतभाषा में 'दल' धा 'दलित' शब्द बना है। यह 'दल' शब्द अकर्मकक्रिया (विकसना), फटना (खण्डित होना), सकर्मक क्रिया (चूर्ण क टुकड़े करना, विदीर्ण करना) तथा नपुंसक लिंग (सैन्य, लश्कर, पत्र) के लिए शब्दकोशों में प्रयुक्त हुआ है। डॉ. राम वर्मा ने संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागर के सम्पादन में 'दलित' शब्द का अर्थ-विनष्ट किया हुआ, मसला हुआ, मर्दित, दबा रौंदा, कुचला और खण्डित किया हुआ बताया है। 'दलित' शब्द व्यापक अर्थ में पीड़ित के अर्थ में आता है, पर 'द वर्ग' का प्रयोग हिन्दू समाज-व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परागत रूप में शूद्र मानी जाने वाली जातियों के लिए रू चुका है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में दलित के लिए अछूत, अन्त्यज, पंचमवर्ण, अस्पृश्य, हरिजन आदि संज्ञाएँ दी गई हैं। अछूतोद्धार कार्यक्रम के लिए महात्मा गाँधी ने शूद्रों-अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द प्रचारित किया; तब डॉ. अम्बेड ने विरोध किया और पीड़ितों, शोषितों, अस्पृश्यों के लिए एक नया शब्द 'डिप्रेस्ड क्लास' दिया, जिसे हिन्दी रूपान्त में 'दलितवर्ग' कहा गया है। डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी के शब्दों में ''दलित एक सम्वेदन है, विचार है, जिसका दबाया गया मनुष्य, किसी भी जाति, वर्ण, धर्म, मत, पंथ एवं भौगोलिक क्षेत्र का हो, दलित है।'' डॉ. मैनेजर पा ने भी कहा है- ''जब मैं दलित शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ तो मेरे ध्यान में वे हैं, जिन्हें भारतीय वर्णव्यवस्था में कहा जाता है या जिन्हें समाज में अछूत माना जाता है।''[1]

दलित-साहित्य की अवधारणा को समझने, परखने के लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि द कहते किसे हैं? यह प्रश्न अधिक संवेदनशील और विवादित है। इसकी निरपेक्ष व्याख्या दुरूह है। दलित-साहित्य लिए अधिकतर दलित-साहित्यकार यह मानते हैं कि दलितों के लिए, दलितों द्वारा, दलितों का साहित्य ही दलित-साहि है। श्री प्रेमकुमार मणि का मानना है कि ''दलितों के लिए, दलितों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित-साहित्य है, विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है।'' डॉ. धर्मवीर मानते हैं कि- ''दलित-साहित्य वह है जिसे दलित लेख लिखता है।'' वहीं दलित-साहित्यकार कँवल भारती कहते हैं कि- ''दलित-साहित्य वर्णव्यवस्था से पीड़ित समाज वेदना का शब्द रूप है।'' डॉ. दयानन्द बटोही, डॉ. प्रेमशंकर, डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, डॉ. एन. सिंह, माताप्रसा

मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि ने उल्लिखित मान्यताओं को ही स्वीकार किया है। नैमिशराय के शब्दों में- "दलित-साहित्य बहुजन समाज के सभी मानवीय अधिकारों और मूल्यों की प्राप्ति के उद्देश्यों से लिखा गया साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है, जिसमें समता और बन्धुता का भाव है और वर्णव्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध है।"[2] निष्कर्षतः दलित-साहित्य वर्णवाद, जातिवाद, पंडा-पुरोहितवाद, ब्राह्मणवाद, शास्त्रवाद, कलावाद, परम्परावाद, पुराणवाद, ईश्वरवाद, आत्मा-परमात्मावाद, पुनर्जन्मवाद को सिरे से नकारता है। वह मनुष्य को मनुष्य का दास मानने को कदापि तैयार नहीं है। वह विज्ञानवाद, प्रकृतिवाद, प्रगतिवाद, तकनीकवाद, शिक्षावाद, समानता-स्वतंत्रता-बंधुता एवं ज्ञान-बुद्धिवाद को स्वीकार करता है। वह वैयक्तिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता का पक्षधर है। वह भोगे हुए यथार्थ को, थोपी गई सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक यन्त्रणाओं को स्वानुभूति के तराजू में तौलकर साहित्य में स्थापित करना चाहता है। दलित-साहित्य विवेक और तर्क के बिना एक पग आगे बढ़ाने को तत्पर नहीं है। अतः दलित-साहित्य मिथ्या प्रपंचों के नकार का और सच्ची मानवीय चेतना के सृजन का सहित्य है, जिसमें आत्मबोध के साथ लौकिकबोध भी समाहित है।

दलित-साहित्य किसी एक विशेष काल, रचना या रचनाकार से संबंधित न होकर अपने अतीत को समाहित किये हुए हैं। यूँ तो वेद, पुराण, स्मृति-साहित्य ने अस्पृश्यता को स्थापित किया है; परन्तु जिस समय-काल से दलित-उत्पीड़न का साहित्यिक, बौद्धिक और सामाजिक-सांस्कृतिक विरोध होता है; तभी से दलित-साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। दलित-साहित्य के प्रेरणा-स्रोतों में बौद्ध साहित्य, नाथ-सिद्ध साहित्य, सन्तसाहित्य, मराठी भाषा का साहित्य, फुले-साहित्य, अम्बेडकर-दर्शन, पेरियार रामास्वामी नायकर के विचारों को सम्मिलित किया जाता है। बौद्ध साहित्य में समानता, तर्कवाद, अनीश्वरवाद, अनात्मवाद जैसे विचारों ने दलित-साहित्य को प्रेरित किया है। सिद्धों और नाथों की बेलाग टिप्पणियों और अधिकतर सिद्धों-नाथों का शूद्र होना, उनका ब्राह्मण-विरोध, दलित-साहित्य लेखन का प्रेरणा-स्रोत बना। डॉ. प्रेमशंकर ने लिखा है- "नाथ-सिद्ध कवियों में कई शूद्र नाथ-सिद्ध कवि थे। इन्होंने जाति-व्यवस्था, ब्राह्मणवादी संस्कृति और साहित्य के विरोध में सशक्त अभिव्यक्ति के द्वारा अपने संघर्ष को जीवन्त रखा है।"[3] सन्त-साहित्य के अन्तर्गत सन्त कबीर और सन्त रविदास ने आधुनिक दलित-साहित्य को बहुत प्रभावित किया है। कबीर और रैदास की निर्मम एवं तार्किक बयानबाजियाँ द्विज साहित्य की धज्जियाँ उड़ा देती हैं। उनकी मुखरता और सामाजिक-धार्मिक जागरूकता से प्रेरित होकर दलित-साहित्य निरन्तर प्रबल हुआ है। ज्योतिराव फुले की रचना 'गुलामगिरी' ने शूद्र समाज, अस्पृश्य समाज में नयी चेतना का संचार किया तथा इन वंचित समाजों में शिक्षा प्राप्ति के लिए वन्द रास्ते खोल दिये। सावित्रीबाई फुले एवं ज्योतिराव फुले ने शैक्षणिक और सामाजिक जागृति के लिए दलित-अस्पृश्य शूद्र और नारी समाज के उत्थान के लिए आजीवन संघर्ष किया जिसके परिणामतः अंग्रेजी काल में शूद्र शिक्षित होकर तर्क-बुद्धि में प्रवीण हुए तथा अपनी व्यथा-कथा कहने में समक्ष हुए। इनकी कार्यप्रणाली एवं विचारधारा से परवर्ती दलित समाज बहुत प्रेरित एवं लाभान्वित हुआ है। दलित-साहित्य को यदि सर्वाधिक और सर्वांगीण रूप से प्रभावित किया है तो डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर ने। डॉ. अम्बेडकर का सम्पूर्ण जीवन दलित-साहित्य का

प्रमुख प्रेरणा स्रोत है। अम्बेडकर का जीवन-संघर्ष, उनकी शैक्षणिक उपलब्धियाँ, उनके आर्थिक-सामाजिक विचार, राजनीतिक विचार एवं आंदोलन, दलित-मुक्ति के लिए उनका संघर्ष, उनकी तार्किकता, संविधानवाद और तथा समाजवाद और साहित्यिक लेखन ने दलित-साहित्य को प्रेरणा दी है। आज का दलित-साहित्य अम्बेडकर के बिना खाली डिब्बा ही प्रतीत होगा। हिन्दी-दलित-साहित्य के लिए मराठी के दलित-साहित्य ने भी प्रेरित किया है। दलित-जीवन की अभिव्यक्तियों के लिए मराठी दलित सन्तों- चोखामेला, सन्तगोरा, सेना, सावता, जनाबाई, वारकरी सम्प्रदाय के माध्यम से अस्पृश्यों की पीड़ा को व्यक्त किया है। आधुनिक काल में नामदेव ढसाल, अर्जुन डाँगले, बावन निम्बालकर, शरण कुमार लिम्बाले आदि ने हिन्दी दलित-साहित्य को प्रेरित किया है।

दलित-साहित्य को तमाम प्रगतिगामी विचारधाराओं ने प्रभावित किया है, उनमें से एक मार्क्सवाद। इस साम्यवादी चिन्तन में भौतिक रूप से तथा आर्थिक रूप से सभी मनुष्यों को एक समान स्वीकारा गया है। मार्क्स धर्म और पाखण्ड का विरोधी है। वह ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकारता है तथा तार्किकता के साथ आर्थिक नों पर सभी का बराबर का हिस्सा चाहता है तथा वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत पर विश्वास करता है एवं वर्गहीन की कल्पना करता है। विदेशों में, या कम्युनिष्ट राष्ट्रों में मार्क्सवाद ने चाहे जितने भी गुल-खिलाए हों, परन्तु में वह अन्दर ही अन्दर वर्णवाद को ही पोषता रहा है। भारतीय साम्यवादी साहित्य (प्रगतिशील साहित्य) बातें बड़ी-बड़ी करता है, राजनीतिक दलों का निर्माण करता है, लेकिन दलित-समूह और नेतृत्व से पृथक् रहकर। जहाँ जाति-विहीन और वर्ग-विहीन समाज की स्थापना के लिए संघर्षरत हैं, वही मार्क्सवादी केवल वर्गभेद मि अपने पुराने पोथी-निष्ठ सिद्धान्तों पर अडिग हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि का मानना है कि "यथा स्थितिवादि परम्परावादियों की बात तो समझ में आती है, लेकिन जिन प्रगतिवादियों को दलित-साहित्य का पक्षधर होना वे भी विरोध में हथियार भाँज रहे हैं। क्या उनका मार्क्सवादी चेहरा एक मुखौटा भर है।"[4] मार्क्सवादी साहि बार-बार यह कहते है कि दलित लेखकों को मार्क्सवादी विचार के साथ एकजुट होकर साहित्य-सृजन करना लेकिन दलित-साहित्यकार यह समझ चुका है कि भारतीय मार्क्सवादियों के संस्कार वही परम्परावादी हैं जो को सदैव गले लगाये रखना चाहते हैं। मार्क्सवादी संगठनों का नेतृत्व प्रारम्भ से ही ब्राह्मणों और ठाकुरों के है, इसलिए वर्णव्यवस्था की निर्ममता से वे अनभिज्ञ हैं। वे मार्क्सवादी वर्णव्यवस्था को त्यागे बिना साम्यवाद लागू चाहते हैं जो कदापि संभव नहीं है। मार्क्सवादी आलोचक नामवर सिंह का विचार है कि "वामपंथियों के मन में द्वारा बताई गयी धारणा थी जबकि भारत का सच वर्ण है।"[5] वस्तुतः दलित-साहित्य मार्क्सवाद का विरोधी न उसे इससे ऊर्जा मिलती है, लेकिन उसका भी मानना है कि मार्क्सवाद वर्ग के साथ-साथ वर्ण-समानता की भी करे तथा साहित्यिक आन्दोलनों में दलित-साहित्यकारों को भी स्थान दे। दलित-साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि हैं- "दलित-साहित्य न मार्क्सवाद का विरोधी है, न जनवाद का। दलित रचनाकार उस दोहरी मानसिकता का ी है जो बाहर से मार्क्सवादी, साम्यवादी और भीतर से फासिस्टों की पक्षधर है। शोषणविहीन समाज की परि को साकार करने के लिए मार्क्सवादी विचारक 'वर्ग' के साथ 'वर्ण' को अपनी लड़ाई का लक्ष्य बनाने में दुलमुल

है? भारतीय समाज में 'वर्ण' एक सच्चाई है, जिसने सदियों से इस देश के जनमानस को सिर्फ टुकड़ों में ही नहीं बाँटा, उनके मानवीय सरोकारों को भी छिन्न-भिन्न किया है। भारतीय मार्क्सवादी, प्रगतिवादी, जनवादी कबतक इस सच्चाई से मुँह मोड़े रहेंगे।"[6] मार्क्सवादियों की कार्यप्रणाली पर मार्क्सवादी लेखिका रमणिका गुप्ता ने भी लिखा है कि- "भारत में केवल वर्ग के नाम पर वर्ण की लड़ाई का हल खोजनेवाले कुछ प्रगतिशील सोच रखनेवाले वामपंथी भी दलित-पिछड़ों में शंका के बीच रोपते हैं। वे भारत में व्याप्त जातीय आधारित हकीकत को नकार कर कबूतर की तरह अपनी आँखें बन्द किये हुए हैं। भारत में जातीयता केवल आर्थिक और वर्गीय संघर्ष से समाप्त नहीं हो सकती। जातीय संकीर्णता को समाज में जातीय स्तर पर ही बराबरी का अहसास दिलाकर तोड़ा जा सकता है। भारत में आर्थिक समृद्धि सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं दिला पाती।"[7]

सामान्यतौर पर गाँधीवाद एक ऐसी विचारधारा है जो मनुष्य-मनुष्य के मध्य प्रेम और सद्भावना का विकास करती है। समतादर्शी के साथ सत्यवादी, अहिंसावादी भी है। धार्मिक शुचिता की पोषक और परम्परावादी तथा यथास्थितिवादी सामाजिक प्रस्थिति की समर्थक भी यही गाँधीवादी विचारधारा है। साहित्यिक संदर्भों में जहाँ अभिजात्यवर्गीय, हिन्दूवादी, ब्राह्मणवादी साहित्यकार गाँधीदर्शन में समाज के साथ राष्ट्र की उन्नति का मार्ग खोजते हैं; वहीं प्रतिक्रियावादी दलित-साहित्यकार गाँधीदर्शन में सामाजिक विपन्नता, वैमनस्य तथा राष्ट्रीय अवनति के दर्शन करते हैं। गाँधी के प्रति दलित-साहित्य का प्रतिक्रियावादी होना विरोध के लिए विरोध नहीं है; बल्कि गाँधी के विचार ही उनके सामाजिक क्रियाकलाप के आधार हैं। दलित-साहित्यकारों में गाँधीवाद की मीमांसा के औजार अम्बेडकर-दर्शन में उपलब्ध होते हैं, जो कि उनके मुख्य प्रेरणास्रोत हैं। गाँधी और अम्बेडकर लगभग एक ही समयकाल में भारतीय क्षितिज पर चमकते है। गाँधी सामाजिक असमानताओं, परम्परागत पौराणिक निर्योग्यताओं को जानबूझकर दरकिनार कर स्वतंत्रता चाहते हैं; जबकि डॉ. अम्बेडकर भारत में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक तथा शैक्षणिक असमानता को समाप्त कर स्वतंत्रता चाहते हैं। गाँधी का उद्देश्य अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्त कर मनुस्मृति के विधान को लागू करना था; जबकि डॉ. अम्बेडकर का उद्देश्य अंग्रेजों की राजनैतिक गुलामी से मुक्त होने के साथ-साथ वर्णवाद की गुलामी से भी मुक्ति का था। इसी तारतम्य में ही डॉ. अम्बेडकर ने लंदन के गोलमेज सम्मेलनों में प्रखर दलित नेता के रूप में उभर कर दलितों के लिए कम्युनल अवार्ड पारित करवा लिया था, जिसे गाँधी ने आमरण अनशन के माध्यम से नेस्तानबूद कर दिया था। यदि साम्प्रदायिक निर्णय भारत में लागू हो जाता; तब राजनीतिक मंचों, संसद-विधानसभाओं में दोहरे मत की हैसियत से दलित अपनी समस्याओं यथा- छुआछूत, अपमान, असमानता, धार्मिक स्वतंत्रता, बेगार, मानसिक पीड़ा का समाधान कर सकता था, जिसे गाँधी ने नहीं करने दिया; क्योंकि गाँधी हिन्दू धर्म, हिन्दू धर्मशास्त्रों, पण्डा-पुरोहितों, वर्णव्यवस्था के समर्थक थे। डॉ. अम्बेडकर ने कहा है- "यदि ऐसा कोई वाद है, जो धर्म रूपी अफीम खिलाकर किसी को झूठे विश्वास से अचेतन कर दे, तो वह गाँधीवाद है।" अछूतों को मानसिक गुलाम बनाये रखने के उद्देश्य से गाँधी जी उन्हें 'हरिजन' की संज्ञा देते हैं, जिसका अर्थ है नाजायज संतानें; जबकि डॉ. अम्बेडकर उन्हें 'दलित' की संज्ञा से अभिहित करते हैं जिसका अर्थ है दबा, कुचला, सदियों से पीड़ित और वंचित

ISSN 2

तथा असहाय। हिन्दू वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में गाँधी जी अपने गुजराती पत्र 'नवजीवन' के 1921-22 के में संपादकीय में लिखते हैं कि- 1. मुझे विश्वास है कि हिन्दू समाज आजतक इसी कारण जीवित रह सका वर्णव्यवस्था पर आधारित है। 2. स्वराज्य के बीज वर्ण-व्यवस्था में उपलब्ध है। विभिन्न जातियाँ सैनिक डि भाँति इसके विभिन्न वर्ण हैं। 3. जो समाज वर्णव्यवस्था का सृजन करता है, उसके बारे में निश्चित रूप से सकता है कि उनमें अनोखी संगठन क्षमता है। 4. जातिप्रथा संघ का दूसरा नाम है। 5. जातिप्रथा एक प्राकृ ान है। भारतवर्ष में उसे धार्मिक रूप दिया गया है। मेरे यही विचार हैं और मैं उनके विरूद्ध हूँ जो वर्ण-व्य तोड़ना चाहते हैं। उक्त वर्णन से इतना तो निश्चित होता है कि गाँधी जी किसी भी दशा में हिन्दू धर्म और अनर्गल मान्यताओं के विरूद्ध नहीं हैं, बल्कि उनके पोषक ही हैं।

गाँधी जी की दलितोद्धार, अछूतोद्धार या हरिजनोद्धार योजना एक छलावा मात्र थी। इसके माध्यम सवर्ण हिन्दुओं के मन में दलितों के प्रति दयाभाव जगाकर उन्हें उत्पीड़न से बचाना चाहते थे। वे दलितों के किसी प्रकार का स्वाभिमान, अधिकार-चेतना अथवा आत्मनिर्भरता की भावना जागृत नहीं करना चाहते थे। रू गुप्ता ने लिखा है- "गाँधी ने अस्पृश्यों को 'हरिजन' का नाम देकर उनके सुधार हेतु एक आन्दोलन जरूर था, लेकिन यह सुधारवादी आन्दोलन दलितों को अपनी पहचान नहीं दे पाया। गाँधी के 'हरिजनवाद' ने दलि एक याचक वर्ग खड़ा कर दिया था, सवर्णों से भीख माँगता याचक वर्ग, सवर्णों की दया पर निर्भर याचक वर्ग परजीवी जमात, एक हरिजन याचक जमात।"[8] दलितोद्धार के मामले में गाँधी जी सुधारवादी थे और अं परिवर्तनकारी। नलिनी पण्डित ने अपनी किताब 'गाँधी' में कहा है कि- "समाज का मूल ढाँचा यानी वर्णाश्रम को हू-ब-हू स्वीकारते हुए उसमें परिवर्तन की कोशिश करना, यही मूल में गाँधी-दर्शन है। सहज आँखों से दिख वाले सामाजिक अन्तर्विरोधों की मूल वजह को खोजने से न केवल वे डरते रहे, अपितु जानबूझकर इस मुद्दे को से दूर हटाते रहे। क्योंकि यह मुद्दा सारे सनातनी समाज को गाँधी जी के खिलाफ खड़ा कर सकता था।"[9] विवेचन के मद्देनज़र दलित-साहित्यकारों ने सदैव ही गाँधी-दर्शन का विरोध किया है। यह अधिकांशतः सत्य कि यदि गाँधी जी डॉ. अम्बेडकर के विचारों से सहमत होते तो सामाजिक एवं धार्मिक असमानताएँ बहुत ही सं हो जाती। लिहाजा दलित-साहित्य अपनी अस्मिताबोध के लिए डॉ. अम्बेडकर को केन्द्र में रखकर उस साहित्य का करता है, जिसमें वर्णव्यवस्था, धर्मगत असमानता का ध्वंस होता है। वह गाँधीवाद को सिरे से नकारता है, क्योंकि उसको 'हरिजन' ही बने रहना पड़ता है; जबकि आज का अस्पृश्य समाज उससे अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता

हिन्दी का दलित-साहित्य समाज, संस्कृति, धर्म, राजनीति एवं आर्थिक व्यवस्थाओं पर निरन्तर उपस्थिति दर्ज करा रहा है। अन्य साहित्यों की भाँति दलित-साहित्य भी अपनी मान्यताएँ, स्थापनाएँ निर्मित कर अमल करता है। वह अपनी मान्यताओं के लिए अन्य साहित्यों पर आश्रित नहीं है। वह आँखों देखी और विवेक- अवधारणाओं को स्वीकार कर मान्यताएँ गढ़ता है। कल्पना और छद्म सौंदर्य उसे स्वीकार नहीं है और न ही चरित्रनायकों, प्रेरणास्रोतों का महिमामण्डन चाहता है।

दलित-साहित्य की राजनीतिक मान्यताओं का आधार स्वतंत्रता-पश्चात् से प्रारंभ होता है। डॉ. अम्बेडकर के परिनिर्वाण के पश्चात् दलित-राजनीति में उन पिट्ठुओं का बोलबाला हो जाता है जो ब्राह्मणवादी ताकतों के गुलाम थे। ऐसे दब्बू दलित राजनेताओं ने अम्बेडकर-विचारधारा को पीछे धकेल कर निहित स्वार्थों के मद्देनजर उस आन्दोलन का नेतृत्व नहीं किया, जिससे कि दलितोद्धार हो सके। दलित नेता स्व. बाबू जगजीवन राम पर टिप्पणी करते हुए किसी ने लिखा है- ''वे ब्राह्मणों में शूद्र और शूद्रों में ब्राह्मण थे।''[10] दलित-साहित्य में यह मान्यता रूढ़ होती जा रही है कि जो दलित नेता दलितों के उद्धार का प्रयास नहीं करता है, वह दलित नेता कदापि नहीं हो सकता है। पूर्व सांसद श्री रामलाल कुरील का कथन उल्लेखनीय है कि ''एक से एक गधे ढूँढ़कर लाये जाते हैं। जब वह पार्लियामेन्ट में आता है, तो वातानुकूलित कमरों में बैठता है। पहले सिपाही या चौकीदार से डरता था, अब एस.पी. को बुलाकर डाँटता है। इस स्थिति में वह जिस समाज का प्रतिनिधित्व करता है, उसे भूलने लगता है।''[11] दलित नेताओं की दबैल राजनीति और वर्चस्ववादी सवर्ण मानसिकता को बी.पी. मौर्य ने इस तरह व्यक्त किया है- ''राजनीतिक दलों में सच्चे दलित नेताओं की कोई कदर नहीं है। चाहे लोकदल, कांग्रेस या हो कम्युनिस्ट पार्टियाँ। जब भी ये सुरक्षित क्षेत्र से टिकिट देती हैं, तो यह जरूर देखती हैं कि आदमी उनके इशारे पर नाचनेवाला है या नहीं।''[12] दलित-साहित्य इस तरह की राजनीतिक सोच की घोर भर्त्सना करता है और यह माँग करता है कि सच्चा राजनीतिक दल वही है जो दलित नेताओं की आजादी एवं दलित-हितवर्द्धक कार्यों को दुर्भावना रहित स्वीकार करता है, अन्यथा शीर्ष राजनीतिक पंचायतों में दलित-नेतृत्व का कोई महत्त्व नहीं है। दलित-साहित्य में यह राजनीतिक मान्यता दृढ़ हो चुकी है कि अभिजात्यवर्गीय मानसिकता दलितों का नेतृत्व खुले मन से स्वीकारने को तैयार नहीं है। वह संवैधानिक विवशताओं के कारण ही आरक्षित सीटें भरने को बाध्य है, निर्णायक या नीतिगत फैसलों में उनका कोई विशेष योगदान नहीं है; क्योंकि हिन्दू धर्म-शास्त्रों एवं मान्यताओं के अनुसार सत्ता का शीर्ष केन्द्र, उपकेन्द्र सवर्णों के नियंत्रण में ही रहेगा, शूद्र, दलित तो सेवक मात्र है; भले ही वह उच्च पद क्यों न प्राप्त कर ले। दलित-साहित्य की राजनीतिक मान्यताओं में 'मण्डल आयोग' एक विशिष्ट भूमिका रखता है। राजनीतिक असमंजस, पशोपेश व मजबूरी में मण्डल आयोग लागू किया गया था, जिसके कारण शूद्र-समाज के लिए विकास के रास्ते खुले; परन्तु उन रास्तों को सवर्णों द्वारा मण्डल विरोधी 'कमण्डल आन्दोलन' चलाकर कुचलने का प्रयास अनवरत किया गया है। चूँकि दलित-शोषित-पिछड़ा समाज धार्मिक अफीम के नशे में अभी भी चूर है; इसलिए वह अपने पैर पर ही कुल्हाड़ी मारने को तत्पर रहता है। दलित-साहित्य यह मान्यता स्थापित करता है कि दलित-समाज राजनीतिक एकजुटता के साथ एक ऐसे राजनीतिक दल का गठन करे, जो वर्णवादी ताकतों को सत्ता के शीर्ष तक पहुँचने से रोक सके साथ ही ऐसे दलित नेतृत्व की अपेक्षा करता है जो दलित-हित के लिए सवर्ण-शक्ति के समक्ष नतमस्तक न हो सके।

दलित-साहित्य धार्मिक मान्यताओं को भी स्थापित करता है। वह हिन्दूवादी, परम्परावादी, स्थास्थितिवादी धार्मिक विचारों, पाखण्डों, आडम्बरों, मिथकों, पौराणिक आख्यानों, वेदों, स्मृतियों में लिखी मनुष्य-विरोधी अवधारणाओं का खण्डन एवं बहिष्कार करता है। वह धर्म को मनुष्य से बढ़कर मानने को तैयार नहीं है। दलित-साहित्यकारों की

ISSN 23

प्रतिबद्धता बौद्धधर्म के उन सिद्धान्तों के प्रति है जो न्याय प्रिय हैं; तार्किक हैं, समाज-हितैषी हैं, मनुष्य
प्रति कारुणिक है तथा समतामूलक और लोकतांत्रिक हैं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रतिपादित बाईस में से दस
के प्रति दलित-साहित्यकार समर्पित हैं। यही दस प्रतिज्ञाएँ दलित-साहित्य की धार्मिक मान्यताएँ बन गयी हैं

1. मैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश को कभी ईश्वर नहीं मानूँगा और न उनकी पूजा करूँगा।
2. मैं राम और कृष्ण को ईश्वर नहीं मानूँगा और न उनकी पूजा करूँगा।
3. मैं गौरी, गणपति, हिन्दू धर्म के किसी देवी-देवता को नहीं मानूँगा और न उनकी पूजा करूँगा।
4. मैं इस बात पर विश्वास नहीं करूँगा कि ईश्वर ने कभी अवतार लिया है।
5. मैं यह विश्वास नहीं करूँगा कि भगवान बुद्ध विष्णु के अवतार हैं। मैं इस प्रचार को धूर्तता का प्रचार
6. मैं श्राद्ध नहीं करूँगा और न कभी पिण्डदान करूँगा।
7. मैं बौद्ध धर्म के विरूद्ध कोई बात नहीं मानूँगा।
8. मैं कोई भी क्रियाकर्म ब्राह्मणों के हाथों नहीं कराउँगा।
9. मैं इस सिद्धान्त को मानूँगा कि सभी मनुष्य एक जाति के हैं।
10. मैं समानता की स्थापना के लिए प्रयास करूँगा।

दलित-साहित्य आत्मा-परमात्मा, भाग्य-किस्मत, स्वर्ग-नरक, देव-दानव, भूत-प्रेत, पुनर्जन्म, आदि हिन्दू
ार्मिक मान्यताओं को नकारता है। वह समस्त प्राणियों में एक ही तरह की चेतना को स्वीकारता है तथा सभी ज
के प्रति करुणाशील दृष्टि रखता है; इसीलिए वह कहीं भी जीव हत्या या जीव हिंसा, बलिप्रथा, यज्ञ, कर्मकाण्ड
का समर्थन नहीं करता है। धर्म की मान्यता को लेकर दलित-साहित्य कुछ विभाजित सा भी नज़र आता है;
कुछ दलित-साहित्यकार हिन्दू धर्म में रहकर ही उसमें सुधार के प्रयास करना चाहते हैं। कुछ रचनाकार हिन्दू
नकार कर बौद्ध धर्म अपनाने की घोषणा करते हैं, तो कुछ साहित्यकार हिन्दू और बौद्ध धर्म से पृथक एक
धर्म की कल्पना करते हैं; परन्तु दलित-साहित्य की धार्मिक मान्यता के अन्तर्गत हिन्दू धर्म को त्यागकर बौद्ध
ओर उन्मुख होना कुछ ज्यादा प्रतीत होता है जैसा कि 1956 में डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म अपनाते समय
कि- ''आज मैं हिन्दू धर्म के नकार से मुक्त हुआ हूँ।''[13]

अपनी आर्थिक मान्यताओं की स्थापना के लिए दलित-साहित्य मार्क्स की विचारधारा के नजदीक पहुँच
है। वह मानता है कि जो दलित जमींदारों, साहूकारों, किलेदारों, बड़े-बड़े असामियों के खेतों में दिन-रात काम
है, उसे उसके हक का, मेहनत का पर्याप्त मेहनताना मिलना चाहिए, जो नहीं मिलता है; क्योंकि वर्णव्यवस्था के
शूद्रों को पर्याप्त मेहनताना पाना प्रतिबंधित है; इसलिए कि वह दास है, गुलाम है। बेगार करने का हकदार है;
सम्मान और पर्याप्त मजदूरी पाने का हकदार नहीं है। मनुस्मृति के अनुसार शूद्र, दलित, अस्पृश्य समर्थ होते

धन एकत्र नहीं कर सकता और यदि किसी तरह वह धन एकत्र कर भी लेता है, तो राजा, जमींदार, सवर्ण उसके धन को छीन ले, क्योंकि वह धन का अधिकारी नहीं है। दलित-साहित्य यह मान्यता स्थापित करता है कि दलित मजदूर गाँवों में जमींदारों, साहूकारों के खेतों में बेगार अथवा कम मजदूरी पर काम न कर नगरों, महानगरों में मेहनत मजदूरी करे, जहाँ पर उसे पर्याप्त मजदूरी मिलेगी, उसका जीवन-स्तर सुधरेगा, उसकी संतानें शिक्षा और स्वास्थ्य से सम्पन्न होंगी तथा जातीय वर्णवादी उत्पीड़न से मुक्ति मिलेगी। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि- ''दलितों का जीवन जहाँ सामाजिक उत्पीड़न, शोषण, दमन से भरा हुआ है, वहीं व्यवस्था के नाम पर लादी गई मर्यादाएँ, बंधन दलित-जीवन की विपन्नताएँ बनकर रहे हैं। आर्थिक विवशताओं और विसंगतिपूर्ण स्थितियों ने दलित-जीवन को नर्क बनाया है। ग्रामीण परिवेश के जातीय उत्पीड़न से पलायन कर शहरों, महानगरों की ओर आनेवाले दलितों के भीतर हीनता भाव इतना गहरा होता है कि उसे कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है।''[14]

दलित-साहित्य समाजवादी आर्थिक व्यवस्था को मान्यता देता है, जिसमें अर्थ के समस्त संसाधनों पर सरकार का प्रभुत्व होता है। बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे सरकारी स्वामित्व के होते हैं, जिनमें दलित मजदूरों को एक निश्चित मात्रा में नियमित व सरकारी नीतियों के अनुसार मजदूरी मिलती है, साथ ही मजदूर संगठन बनाकर वह अपनी माँगों को सरकार तक पहुँचा भी सकता है। लेकिन राजनीतिक दलों ने उस समाजवादी व्यवस्था का रूप बदलकर निजीकरण कर दिया है, जिससे सवर्ण पूँजीपतियों का वर्चस्व अर्थ के संसाधनों पर कायम हो चुका है। परिणामतः दलित मजदूर वापस शहरों से ग्रामीण खेतिहर मजदूर बनने को बाध्य हो रहा है। प्रो. जी. नानचरैया ने लिखा है- ''निजीकरण को सामाजिक सेवाओं में भी लागू किया जा रहा है, जिसमें शिक्षा और स्वास्थ्य भी शामिल है। शिक्षा और स्वास्थ्य बाजारू माल की तरह हो गये हैं और गरीबों के लिए, ये सेवाएँ पाना बहुत ही मुस्किल हो गया है, क्योंकि सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से वे कमजोर हैं।''[15] पंचायती राजव्यवस्था तथा मनरेगा (महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना) भी दलितों का उद्धार नहीं कर सकी; क्योंकि ग्रामीण-परिवेश पूर्णतः सामन्तशाही एवं ब्राह्मणवादी व्यवस्था से आबाद्ध है, जहाँ पर निम्न वर्गीय मजदूर कागजों पर मजदूरी कर रहा है, वास्तविकता में उसे अल्प मजदूरी ही प्राप्त होती है।

हिन्दी साहित्य का परम्परागत द्विजसाहित्य संस्कृत और पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र से मिलकर बना है जो सत्यम, शिवम् और सुन्दरम् की अवधारणा पर आधारित है। लेकिन दलित-साहित्य उक्त अवधारणा में विश्वास नहीं करता है। क्योंकि डॉ. शरण कुमार लिम्बाले के अनुसार- ''सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् ये भेदभाव की कल्पनाएँ हैं- जिसके आधार पर आम आदमी का शोषण हुआ है। दरअसल सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् की धारणा तो सवर्ण समाज के स्वार्थ-साधन के लिए रची गई साजिश है। काल्पनिक सत्य और काल्पनिक सौंदर्य सब मूर्खता की बाते हैं। विश्व में मनुष्य जैसी 'सत्य और सुन्दर' दूसरी कोई चीज नहीं है। इसलिए तो मनुष्य की समता, स्वतंत्रता, न्याय और बन्धुत्व की चर्चा होना आवश्यक है। मेरे विचार में यही चर्चा दलित-साहित्य के सौंदर्यशास्त्र की चर्चा होगी।''[16] हिन्दी

ISSN

साहित्य का सम्पूर्ण साहित्य यदि सत्यम् (यथार्थ), शिवम् (कल्याणकारी) और सुन्दरम् (उपयोगी) होता, तब
साहित्य साहित्यिक कोटि से निष्कासित हो जाता है, क्योंकि उक्त साहित्य तो स्वान्तः सुखाय की धारणा पर
है। अध्यात्म, प्रेम-वासना, रासरंग, कलात्मक सौंदर्य उसके साहित्यिक उपादान हैं। उसमें यथार्थ मानवीय
अभाव है। न तो वह साहित्य कल्याणकारी है और न ही सामाजिक सरोकारों के सापेक्ष है। सामाजिक
बातें कहीं भी उसमें नज़र नहीं आती हैं। ''अलंकारों, छन्दों, रसों व शब्दों की कलात्मकता के माध्यम
संवेदन शून्य, वाचनीय व मानसिक व्याभिचार का साहित्य सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् की कसौटी प
उतर सकता, जबकि दलित-साहित्य की परिकल्पना ही सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के व्यापक फलक पर
मानव को देव, धर्म, देश से भी उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करती है।''[17] ओमप्रकाश वाल्मीकि का मा
''परम्परागत सौंदर्यशास्त्र पण्डित जगन्नाथ के 'वाक्यम रसात्मकम् काव्यम्' को सूत्र की तरह दोहराता
दलित लेखकों की दृष्टि में साहित्य साहित्याचार्यों द्वारा निर्मित 'रस' अधूरे एवं पूर्वाग्रहों से पूर्ण हैं। दलि
विद्रोह और नकार से उपजा है। शोषित रसों के द्वारा दलित रचनाओं के केन्द्रीयभाव का मूल्यांकन नहीं
है।''[18] इसी परिप्रेक्ष्य में दलित-साहित्यकार माताप्रसाद ने लिखा है कि- ''दलित-साहित्य के सम्बन्ध में य
उठाई जाती है कि इसमें 'सौंदर्यबोध' का अभाव है। 'सौंदर्यबोध' के सम्बन्ध में अभिजनों और दलितों के
में अन्तर है। अभिजन अपने ही दृष्टिकोण से उन्हें देखते हैं, वे किसी बात को सीधे न कहकर काल्पनि
देकर उसमें सौंदर्य देखते हैं। वे मनोरंजन के लिए काल्पनिक और पौराणिक कहानियाँ लिखकर लोगों को
जगत् का झूठा स्वप्न दिखाते हैं। अवैज्ञानिक बातों को परम्परागत रूप से मानते हुए वास्तविक जीवन
स्वर्ग का लालच, सुख या संतोष दिलाने का प्रयास करते हैं। इसके विपरीत दलित-साहित्यकार अपने
समाज के दलन, उत्पीड़न, शोषण, अपमान, महिलाओं के साथ बलात्कार, व्यभिचार की बातें सामने रख
विरोध-प्रतिरोध या प्रतिशोध के लिए उकसाता है, इसलिए उसकी भाषा में कड़वाहट, रोष, क्रोध, चिल्लाहट,
और संघर्ष को बढ़ानेवाले शब्द होते हैं। ऐसी भाषा के रस, छंद और अलंकार का अभाव होता है। उनक
में ''छन्द नहीं', छन्द का नकार होता है। दलित-साहित्यकार की भाषा घुमाव-फिराव वाली न होकर स्पष्ट
होती है। वह श्रमण-संस्कृति का पोषक है, इसलिए उनमें स्वाभिमान होता है।''[19] दलित-साहित्यकार अप
में जिन जीवनमूल्यों को अभिव्यक्ति दे रहे हैं, वे ही दलित-साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के मुख्य तत्व हैं। उन प्र
और जीवनमूल्यों की चर्चा ओमप्रकाश वाल्मीकि ने निम्न प्रकार से की है-

1. समता, स्वतंत्रता, बन्धुता, न्याय के जीवन अनुभव, अनुभव जन्य आशय तथा उस आशय की अभिव्यक्ति होना।
2. संस्कृति और धर्म के नाम पर वास्तविकता को छिपाकर रखे गये ढोंग को नकारना।
3. कल्पनाजन्य प्रतिमानों का निषेध। जैसे- अमृत, मधुर पेय की कल्पना लेकिन उसका आस्वाद किसी ने नह

4. नित्य परिवर्तनीयता के आधार पर जीवन-मूल्यों का मूल्यांकन।

5. बन्धनमुक्त अभिव्यक्ति और अनुभवों का सच्चापन, जैसे- जैसा देखा, भोगा, उसका वैसा चित्रण। शब्द केवल माध्यम हैं।

दलित-साहित्यकार सी.बी. भारती दलित-साहित्य के सौंदर्य को और स्पष्ट करते हैं कि- "दलित-साहित्य की सौंदर्यदृष्टि होती है- उत्पीड़न, पीड़ा व उसके विस्तार का निरपेक्ष आंकलन, धार्मिक पाखण्डों व निहित स्वार्थवश निर्मित शोषण के उपादानों के प्रति घृणा, एक सजग मानवीय अस्मिता, समत्वबोध, सामाजिक अन्याय के प्रति प्रतिकार का सामर्थ्य, सामाजिक परिवर्तनों के प्रति अडिग आस्था व परम्परागत घृणित व्यवस्थाओं के विच्छेन की सफलता का विनाश। सामाजिक दायित्वों से जुड़ी रचना धर्मिता व उसके प्रति सच्ची प्रतिस्पर्धा ही दलित-साहित्य का सौंदर्यविधान है।"[20] इसीक्रम में डॉ. एन.सिंह. ने अपने विचार व्यक्त किये हैं कि- "दलित-साहित्य का शब्दसौंदर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज और साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही सड़ी-गली परम्पराओं पर बेदर्दी से चोट करता है। वह शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीने वाले दलित को लड़ना सिखाता है, वह सिर पर पत्थर ढोनेवाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में बतलाता है। उसे धर्म की भूल-भुलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाता है। उसके लिए जिस शाब्दिक प्रहार क्षमता की आवश्यकता है, वह उसमें है और यही दलित-साहित्य का सौंदर्यशास्त्र है।"[21] चिंतक जयप्रकाश कर्दम भी यही मानते हैं कि- "दलित-साहित्य बौद्धिक विकास या मनोरंजन का साधन नहीं, सामाजिक परिवर्तन की एक खास मुहिम है, दलितों को उनकी अस्मिता की पहचान कराने का एक माध्यम है। इसलिए इसमें रसवत्ता का होना अनिवार्य नहीं है। उसे रोटी का उपाय चाहिए, अपमान और जिल्लत से उबरने की शक्ति चाहिए। रसों का आस्वादन उसे ही हो सकता है जिसका पेट भरा हो तथा मन-मस्तिष्क सब प्रकार की चिन्ताओं से रहित हो; अपने अपमान से पीड़ित और पेट की क्षुधा से ग्रसित व्यक्ति को नहीं। अन्धेरी कोठरी में कैद व्यक्ति को स्वादिष्ट व्यंजन नहीं, मुक्ति का मार्ग चाहिए।"[22]

सन्दर्भ

1. डॉ. एन. सिंह : दलित-साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, द्वितीय संस्करण, 2014, पृ.68
2. वही, पृ.70
3. वही, पृ.84
4. वही, पृ.224
5. वही, पृ.226
6. वही, पृ.229

ISSN 23

7. वही, पृ.229
8. वही, पृ.233
9. वही, पृ.234
10. वही, पृ.249
11. वही, पृ.249
12. वही, पृ.249
13. वही, पृ.257
14. वही, पृ.259
15. वही, पृ.260
16. वही, पृ.286
17. वही, पृ.287
18. वही, पृ.288
19. वही, पृ.290
20. वही, पृ.290
21. वही, पृ.291
22. वही, पृ.291